

ईश्वरतत्त्व की मीमांसा 'उपनिषदों के परिप्रेक्ष्य में

अशोक कुमार वर्मा
शोधच्छात्र संस्कृत विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक—इन त्रिविध तापों से सम्पूर्ण जगत् संतृप्त है जिससे मुक्ति हेतु मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने स्व नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा और सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्वतन्त्र चिन्तन द्वारा जिस तत्त्वज्ञान का अन्वेषण किया, भारतीय परम्परा उसे 'दर्शन' पद से अभिहित करती है।

यह निर्विवाद रूप से मान्यता प्राप्त है कि भारतीय दार्शनिक का उद्गम 'ऋग्वेद' है। ऋग्वेद में दार्शनिक चिन्तन के मूलतत्त्व प्राप्त होते हैं। इसमें महर्षि प्रजापति परमेष्ठी जगत् के मूलतत्त्व को व्याख्यायित करते हैं कि "आनीदवातं स्वधया तदेकम्।¹ अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में एक ही तत्त्व पायु के बिना ही अपनी शक्ति से श्वास लेता था। इसी प्रकार आंगिरस ऋषि वस्तुगत सत्य की पहचान हेतु तर्क की उपयोगिता के विषय में कहते हैं "सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्"² अर्थात् परस्पर मिलो, विषय का विवेचन करो और एक-दूसरे के मन को पहचानो — इन ऋचाओं से दार्शनिक विचारधारा का सञ्ज्ञान होता है। प्रथम तो प्रज्ञामूलक है, जो अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा तत्त्वों का विवेचन करता हुआ अद्वैततत्त्व पर आरूढ़ होता है और द्वितीय तर्कमूलक है जो स्वतार्किक बुद्धि द्वारा तत्त्वों की समीक्षा करते हुए अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होकर अभीष्ट सिद्धिरूपी सीमा पर स्थित होता है।

वेद को दार्शनिक चिन्तन का ही नहीं, अपितु सृष्टि में विद्यमान समस्त ज्ञान—विज्ञान का आद्यस्रोत माना जाता है। मनु से इसी सन्दर्भ में लिखा है — "सर्वज्ञानमयो हि सः"।

वैदिक वांगमय मुख्यतः तीन भागों में विभाजित है —

1. संहिता 2. ब्राह्मण 3. आरण्यक या उपनिषद् —

इससे स्पष्ट होता है कि उपनिषद् वैदिक वांगमय के अन्तिम भाग है, जिनमें वैदिक वांगमय के मूल चिन्तन को संकलित किया गया है।

उपनिषद् शब्द 'उप' और 'नि' उपसर्ग पूर्वक 'सद्गतौ' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है जो उस विद्या का अर्थ वाची है जिसके कारण व्यक्ति परमात्मा के अत्यन्त सन्निकट पहुँच जाता है। 'उपनिषद्' आरण्यकों के प्रमुख अंग हैं। ये भारतीय दर्शन के तत्त्वज्ञान और धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों के मूलस्रोत हैं। वैदिक धर्म की मूलतत्त्व प्रतिपादिका प्रस्थानत्रयी³ में उपनिषद् ही मुख्य है। वेद के सारतत्त्व सिद्धान्तों के निदर्शक उपनिषद् ही 'वेदान्त' के नाम से अभिहित हैं। वेदान्त में तो वेद के अन्तिम भाग का अध्यात्म स्वरूप विकसित हुआ है।

वेदान्तसार में सदानन्द ने लिखा है "वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरकसूत्रादीनि च"। अर्थात् जिसमें जीव का सम्यक् सूक्ष्म विवेचन किया जाता है, वह वेदान्त है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इत्यादि शारीरिक सूत्रों तथा श्रीमद्भगवद्गीता इत्यादि आध्यात्मिक शास्त्रों को भी वेदान्त कहा गया है। अतः स्पष्ट होता है कि मूल रूप में उपनिषद् ही वेदान्त कहे जाते हैं और इन्हीं के आधार पर जिस धार्मिक एवं दार्शनिक चिन्तनधारा का प्रवाह निरन्तर हो रहा है, वह सभी वेदान्त हैं।

'उपनिषद्' शब्द ज्ञान के उस विस्तृत दार्शनिक साहित्य का ज्ञापक है, जो वैदिक कर्मकाण्डीय प्रतिक्रिया के साथ समुत्पन्न हुआ था। यह मुख्यतः 'ब्रह्मविद्या' का संकेतक है क्योंकि इस विद्या के अनुशीलन से मुमुक्षुओं की संसार बीजरूपी अविद्या का विनाश हो जाता है, वह ब्रह्म का ज्ञान करा देती है तथा मनुष्य के गर्भावास, जन्म, जरा, मृत्यु आदि दुःख सर्वथा शिथिल हो जाते हैं –

अविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणाद् विनशनाद् परं ब्रह्म
वा गमयतीति ब्रह्मगमयितृत्वेन योगाद् गर्भवासजन्म—
जराद्युपद्रववृन्दस्य लोकान्तरे पौनः पुन्येन प्रवृत्तस्य
अवसादयितृत्वेन वा ब्रह्मविद्योपनिषद्।⁴

आचार्य शंकर के मतानुसार 'उपनिषद्' का मुख्यार्थ 'ब्रह्मविद्या' तथा गौण अर्थ 'ब्रह्मविद्या प्रतिपादक ग्रन्थ विशेष' है। उपनिषदों में अनादि ब्रह्म को ही विश्व का स्रष्टा, नियन्ता तथा पालन कर्ता माना गया है।

'एकमेवाद्वितीयम्' से स्पष्ट होता है कि ब्रह्म एक ऐसी सर्वव्यापी सत्ता है जो सृष्टि के अणु-अणु में परिव्याप्त है। वह निराकार, निर्विकार, अविनाशी, अनादि, चैतन्य तथा आनन्दमय है। ब्रह्म अनन्त एवं अद्वितीय है, वह नामरूपादिहीन है। वह निरपेक्ष, स्वतन्त्र, शुद्ध तथा अतीन्द्रिय सत्ता है। वह कर्ता नहीं, अपितु निष्क्रिय है। समग्र जगत् ब्रह्म का विवर्त है – आदि के रूप में ब्रह्म के स्वरूप विवेचन की जो दीर्घकालीन परम्परा

भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों में प्राप्त होती है उसका उत्स ही उपनिषद् है। 'अयमात्मा ब्रह्म', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि जैसे उपनिषद् वाक्यों में व्यक्त सिद्धान्त का व्यापक सूक्ष्मातिसूक्ष्म, गहन और तत्त्वपूर्ण विवेचन परवर्ती भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों और साहित्य में अनेक प्रकार से हुआ।

जिस प्रकार मृत्तिका ही सत्य से भाषित होती है, किन्तु उससे बने भाण्डादि तो केवल नामरूप विकास स्वरूप हैं, उसी प्रकार ब्रह्म सत्य है और जो उससे भिन्न है, वह विकार है। छान्दोग्योपनिषद् स्पष्टतः इस तत्त्व-सत्य का उद्घोष करता है कि –

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। तदैक्षत बहु स्यां
प्रजायेयेति यथा सौम्यकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञात
स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।।⁵

'बृहदारण्यकोपनिषद्' में कहा गया है कि यथा धधकती अग्नि से चतुर्दिक ज्वालापुञ्ज प्रस्फुटित होता है, वैसे ही ब्रह्म से यह सम्पूर्ण जगत् उद्भूत होता है –

सयथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः
सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति।।⁶

इसी प्रकार श्वेताश्वतरोपनिषद् भी निरूपित करता है कि एक ब्रह्म आत्मा के रूप में सम्पूर्ण जीवों में अभिव्याप्त है।

'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा'⁷

'बृहदारण्यकोपनिषद्' पुनः कहता है कि जिस प्रकार पानी में विलोडित नमक दिखाई नहीं देता, क्योंकि वह जल के प्रत्येक अणु में व्याप्त रहता है, वैसे ही ब्रह्म सृष्टि के प्रत्येक कण में परिव्याप्त रहता है –

'स यथा सैन्धवखिल्य उदके प्रास्त उदकमेवानुविलीयेत,
न हास्योद्ग्रहणायेव स्यात्। यतो यतस्त्वाददीत लवणमेवैवं
वा अर इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानधन एव।।⁸

यदि सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का विवर्त है, सृष्टि के प्रत्येक कण में परिव्याप्त है, सर्वव्यापी, अनन्त एवं अद्वितीय है तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन सभी गुणों से युक्त ब्रह्म का स्वरूप किस प्रकार है? उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर केनोपनिषद् में बड़े सुन्दर ढंग से वर्णित किया गया है, जिसमें प्रारम्भ में ही प्रश्न किया गया है –

‘केनेषितं पतति प्रेषितं मनःकेन प्राणः प्रथम प्रैति युक्तः ।

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोतं क उ देवो युनक्ति ।।⁹

अर्थात् किसके द्वारा सत्ता स्फूर्ति पाकर और सञ्चालित होकर यह अन्तःकरण अपने विषयों में उन तक पहुँचता है, किसके द्वारा नियुक्त होकर सबसे श्रेष्ठ प्राण चरता है, किसके द्वारा क्रियाशील की हुई वाणी को लोग बोलते हैं और कौन देव नेत्रेन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय को प्रयुक्त करता है। इस प्रश्न का उत्तर दूसरे श्लोक में परब्रह्म को ही मन, प्राण एवं इन्द्रियों का प्रेरक मानकर दिया गया है—

श्रोत्रस्य श्रोतं मनसो मनो यद्वाचो ह वाच स उ प्राणस्य प्राणः ।

चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।¹⁰

अतः ब्रह्म को सर्वेन्द्रियों से परे कहा गया है। वाणी आदि जिसकी विशेषता नहीं बता सकती हैं, अपितु उसी की प्रेरणा से व्यवहार करने में समर्थ होती हैं, ऐसा है वह ब्रह्म।

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्वि नेदं यदिदमुपासते ।।

वाणी के माध्यम से वाचित जिस तत्त्व की अर्चना की जाती है वह ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप न होकर सर्वथा वाणी से अगम्य है। केनोपनिषद् में गुरु—शिष्य संवाद में गुरु ने स्पष्टतः ब्रह्म के स्वरूप का विवेचन किया है कि परब्रह्म को मन के द्वारा कोई भी जान नहीं सकता है, अपितु उनसे दृश्यता की सामर्थ्य तो परब्रह्म की ही शक्ति के कारण आ सकती है। कर्णेन्द्रिय में शब्द को ग्रहण करने की क्षमता उसी की प्रेरणा शक्ति का प्रतिफल है और जिससे प्राण की चेतना विद्यमान रहती है, वह ब्रह्म है। तात्पर्यतः सिद्ध होता है कि वाणी, मन, चक्षु, कर्ण, घ्राणादि इन्द्रियों के अनुभवगम्य जो विषय हैं तथा जिस तत्त्व की लोग उपासना करते हैं, वह परब्रह्म परमात्मा का यथार्थ रूप नहीं है। इन सर्वेन्द्रियों में स्वविषयों को ग्रहण करने की योग्यता जिसकी प्रेरणा और शक्ति से होती है, उस परमतत्त्व को ब्रह्म कहते हैं। अतः गुरु—शिष्य के माध्यम से लोगों को सचेष्ट किया जाता है कि जो लोग व्यर्थ में परब्रह्मज्ञान का दावा किया करते हैं।

‘मुण्डकोपनिषद्’ में कहा गया है कि—

‘न चक्षुषा ग्रह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा ।

ज्ञानप्रसादेन विशुद्ध सत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलंध्यायमानः ॥¹¹

पुनः इसी उपनिषद् में ब्रह्म के सूक्ष्मतर और प्रकाश स्वरूप का वर्णन किया गया है जिसमें माना गया है कि वह ब्रह्म सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रूप में प्रकाशित होता है ।

‘नेह नानास्ति किञ्चिन्न’ के अर्थगाम्भीर्य से युक्त ‘कठोपनिषद्’ में परब्रह्म परमात्मा का सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म और महान् से अतिमहान् रूप में निरूपण किया गया है । कृष्णयजुर्वेद की कठशाखा का अनुवर्ती यह उपनिषद् स्वगाम्भीर्य अद्वैततत्त्व निरूपण के लिए प्रख्यात है । इस उपनिषद् में नाचिकेता के विशेष आग्रह पर ‘यम’ ने अद्वैत तत्त्व का मार्मिक तथा हृदयंगम उपदेश दिया है । अतः उस ब्रह्म की महिमा को ईप्सा और व्यग्रता से रहित कोई साधक ही जान सकता है—

अणोरणीयान्महतो महीया—

नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको

धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥¹²

यह स्पष्टतः कहा गया है कि परमात्मा परब्रह्म न तो प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है । जिसको यह स्वीकार करता है उसी के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि उसके लिए यह अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट कर देता है—

नायमात्मा प्रवचने न लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन ।

यमेवैप वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुस्वाम् ॥¹³

सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रकाशक सूर्य की भाँति वह समस्त प्राणियों की आत्मा में निवास करता हुआ उनके कर्मफल से निर्लिप्त रहता है—

‘एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा, न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥¹⁴

वह परम पुरुष परमात्मा जीवों को उनके कर्मानुसार भोगों का निर्माण करता है और प्रलय के समय में भी जीवों के सो जाने पर स्वयं महिमा से नित्य जागृतावस्था में रहता है। वही परम विशुद्ध तत्त्व है, वही परब्रह्म है, उसी को अमृततत्त्व स्वरूप परमात्मा कहा जाता है। सभी लोकों का वह आश्रय स्थल है। उसने जिस नियम को बनाया है उसका उल्लंघन कोई करने का दुःसाहस नहीं कर सकता। इसी परब्रह्म के भय से अग्नि और सूर्य तपता है तथा इन्द्र, वायु और मृत्यु अपने-अपने कामों में प्रवृत्त होते हैं—

भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्यः ।

भयादिन्द्रश्च, वायुश्च मृत्युधर्धावति पञ्चमः ॥¹⁵

उस परमात्मा के साक्षात्कार का एक मात्र साधन योग है। ब्रह्म के स्वरूप निर्णय का विनिश्चय 'अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः' शब्दों से किया गया है।

'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में जीवात्मा को "अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितः" के रूप में निरूपित किया गया है। इस स्थान पर जीवात्मा का स्वरूप निर्धारित करते हुए कहा गया है कि वह जीवात्मा इतना सूक्ष्म है कि बाल की नोक के सौवें भाग के पुनः सौ भाग कर दिया जाए तो जो एक भाग प्राप्त होता है वही उसका आकार मानना चाहिए। अतः वह अनन्त स्वरूप है। यहाँ जो जीवात्मा का स्वरूप बताया गया है, वही परब्रह्म परमात्मा का भी माना गया है। अतः स्पष्ट है कि उपनिषदों में परमात्मा एवं जीवात्मा के अभेदतत्त्व की घोषणा की गई है।

'ईशावास्योपनिषद्' जिस स्थान पर ज्ञान-दृष्टि से कर्म की उपासना का रहस्य बताता है, निष्कामभाव से कर्म सम्पादन का पक्षधर है, उसी स्थान पर वह अद्वैत भावना को भी सम्बोधित करता है। जहाँ 'केनोपनिषद्' उपास्य ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म में पृथक्त्व का निदर्शन कराता हुआ ब्रह्म के रहस्यमय स्वरूप का संकेत देता है, वहीं 'कठोपनिषद्' अपने गम्भीर अद्वैत तत्त्व से प्रख्यात है।

'मुण्डकोपनिषद्' यदि ब्रह्मज्ञान की श्रेष्ठता प्रतिपादित करता है तो माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा का बड़ा ही मार्मिक तथा रहस्यात्मक चित्रण किया गया है। 'छान्दोग्योपनिषद्' तो ब्रह्मज्ञान प्रतिपादन की दृष्टि से नितान्त प्रौढ़ प्रामाणिक तथा सर्वसिद्ध है। 'आत्मा व अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मतव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि' आधार वाक्य के माध्यम से आत्मा का दर्शन कराने वाला 'बृहदारण्यकोपनिषद्' तत्त्वज्ञान और आध्यात्म शिक्षा का अनुपम ग्रन्थराशि है।

तात्पर्यतः प्रतीत होता है कि इन उपनिषदों में ईश्वतत्त्व का निरूपण विस्तृत रूप से प्राप्त होता है, जो एक परमसत्ता का ही प्रतिष्ठापन उपनिषदों का मुख्य बिन्दु रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ऋग्वेद 10/129/2
2. ऋग्वेद 10/191/2
3. प्रस्थानत्रयी – उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र
4. शांकरभाष्य
5. छान्दोग्योपनिषद् – 6/2/1
6. बृहदारण्यकोपनिषद् – 2/1/20
7. श्वेताश्वतरोपनिषद् – 6/11
8. बृहदारण्यकोपनिषद् – 2/4/12
9. केनोपनिषद् – 1/1
10. कठोपनिषद् – 2/2
11. मुण्डकोपनिषद् – 3/1/8
12. कठोपनिषद् – 1/2/20
13. कठोपनिषद् – 2/2/8
14. कठोपनिषद् – 2/2/9,11
15. कठोपनिषद् – 2/3/3